इकाई 8 प्रतिमानाटकम् (प्रथम अङ्क) – भाग 1

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 प्रतिमानाटकम् (प्रथम अङ्क) – श्लोक 1-15

8.3 सारांश

8.4 शब्दावली

8.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- महाकवि भास की नाट्य चातुरी को जान सकेंगे।
- नाटकीय संघटनाओं की संयोजना में भास के कौशल को जान सकेंगे।
- राम की उदारता को पढ़कर उनके चरित्र का अनुकरण कर सकेंगे।
- सीता के वार्तालापों से पारिवारिक सामंजस्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रसन्नता के बाद तुरन्त उपस्थित हुए अवसाद के समय धैर्य धारण करने की योग्यता प्राप्त कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

प्रतिमानाटक महाकवि भास के महत्त्वपूर्ण नाटकों में गिना जाता है। यह सात अंकों में निबद्ध नाटक है। श्रीराम जी का युवराज पद पर अभिषेक के प्रसंग को लेकर इसकी नाट्य रचना की गई है। प्रथम अंक राम के राज्याभिषेक और वनगमन पर आधारित है। महाकवि भास ने प्रथम अंक में राम के वनगमन की कथा का मनोहारी रूपान्तरण किया है। आपके अध्ययन के सौकर्य को देखते हुए प्रथम अंक को दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में आप राम के राज्याभिषेक की तैयारी से लेकर राम द्वारा कैकेयी को निर्दोष निरूपित करने तक का वृत्तान्त पढ़ेंगे। नाटक के प्रारम्भ में प्रथमतः सूत्रधार प्रवेश करके नान्दी पाठ करता है। तदनन्तर वह सूचना देता है कि महाराज दशरथ राम का राज्याभिषेक करने के लिए तत्पर हैं और राज्याभिषेक की समस्त तैयारियाँ पूरी कर ली गई हैं। अभिषेक प्रारम्भ होता ही है कि मन्थरा आकर महाराज दशरथ के कान में कुछ कहती है और अभिषेक रोक दिया जाता है। तदनन्तर राम यह कहते हुए प्रसन्नता व्यक्त करते हैं कि मेरा बालभाव भी सुरक्षित रहा और मेरे राज्याभिषेक के बाद दशरथ वनगमन का अवसर भी नहीं आया। राम और सीता के मध्य वार्तालाप चलता है और वो बताते हैं कि किस प्रकार से राज्याभिषेक का कार्य पूर्ण नहीं हो पाया। इस समय राम कैकेयी को निर्दोष निरूपित करते हुए कहते हैं कि जिसका मुझ जैसा पुत्र है तथा इन्द्र के समान जिनके पति हैं वह इस संसार के किस

फल को पाने के लिए अकार्य करेगी? वास्तव में तो अयोध्या का राज्य माता कैकेयी के विवाह के समय दशरथ द्वारा शुल्क के रूप में कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न होने वाले पुत्र को ही दे दिया गया था। हम लोग तो भाई भरत के राज्य का अपहरण ही कर रहे थे।

8.2 प्रतिमानाटकम् (प्रथम अङ्क) – श्लोक 1-15

मूलपाठ –

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः – सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च ।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम् ।।1।।

अन्वयः – यः देव्या रावणार्यप्रतिमः विभीषणात्मा च स सीताभवः सुमन्त्र तुष्टः सहलक्ष्मणः भरतः च सुग्रीवरामः अनुसर्गं पातु ।।1।।

व्याख्या – सीताभवः इतिकृत्यः देव्या दीव्यतीति देवी तया, सीतया हेतुभूतया रावणारिः रावयति रोदयति साधुजनान् कष्टदानकारणेनेति रावणः तदाख्यराक्षस विशेषः तस्य अरिः शत्रुः सीताहरणकारणेनैव रावणः श्रीभगवतः रामचन्द्रस्य शत्रुरभूदिति रावणारिः–रावणशत्रुः अप्रतिमः नास्ति प्रतिमा उपमानं यस्य सः अप्रतिमः अद्वितीयवीर इत्यर्थः। विभीषणात्मा विभीषणः रावणानुजः सः आत्मा आत्मीयो यस्य सः विभीषणात्मा। विभीषणो हि समदुःखसुखः रामस्य आत्मीया सखा। सः सीताभवः सीताजनकदुहिता तस्या भवः क्षेमः क्षेमकारणम्। कार्य कारणयोरभेदादीदृक्प्रयोगः सम्भवति यद्वा सीताभवः क्षेमः यस्मादिति बहुव्रीहिः सुमन्त्रतुष्टः–सुमन्त्रः = शोभनो मन्त्रः तेन तुष्टः = मुदितः नीत्याचरणेन सन्तुष्टः यद्वा सुमन्त्रनामकेन पितृसारथिभूतेन मन्त्रिणां वा तुष्टः = प्रीतः। सहलक्ष्मणः लक्ष्मणेन सहितः वर्तमानः लक्ष्मणसन्निधानः इति यावद् यद्वा सह भ्रातुरर्थे वनवास – तत्परिचर्यात्प्रेयसीहरणादिनानाक्लेशानां सोढा लक्ष्मणः तदभिधानो भ्राता यस्य सः। भरतः भरतीति भरस्तं तनोतीति भरतः = जगद्रक्षक इत्यर्थः। यद्वा लोकस्य भरणात् रक्षणाद् धारणात् पालनाच्च भरतः। सुग्रीवरामः सुष्ठु ग्रीवा यस्य स सुग्रीवः कम्बुकण्ठ इत्यर्थः स चासौ रामः सर्वत्र रमणाद्रामः अनुसर्गम् सर्गे सर्गे जन्मनि जन्मनि प्रतिप्रादुर्भावमित्यर्थः। वीप्सायामव्ययीभावः। पातु रक्षतु युष्मान् अस्मानिति शेषः। अथ चात्र सीता-राम-सुमन्त्र-सुग्रीव-लक्ष्मण-रावण-विभीषण-भरताभिधानानि नाटकीयानि प्रमुखपात्राणि मुद्रालङ्कार द्वारोपनिबद्धानि। अप्रतिमघटक प्रतिम शब्दश्च एकदेशविकृतन्यायमहिम्ना प्रतिमा शब्दं स्मारयन् प्रतिमानाटकस्य नामधेयम् तद् बीजभूतं दशरथप्रतिमावृत्तं चावेदयति अत्र द्वादशपदा नान्दी सामान्य मङ्गलरूपेणोक्ता। यथोक्तम्– पदैर्दशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत। अत्र पदपदम् न श्लोक पादरूपम् किन्तु सुबन्ततिङन्तरूपपदभाजम्। तच्च श्लोके सीताभवः इत्यादि पृथक् पदानि कृत्वा गणनया द्वादशसंख्यानि भवन्ति। मुद्रालङ्कारः। 'सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थ परैः पदैः' इति तल्लक्षणम्। सीताभव इत्यत्र हेतुहेतुमतोरभेदवर्णनात् हेत्वलङ्कारः – 'हेतोर्हेतुमता साधर्म्यभेदो यत्र वण्यते' इति तल्लक्षणम्। विशेषणानां साभिप्रायत्वात्परिकरोऽपि। 'उक्तैविशेषणः साभिप्रायैः परिकरो मतः' इति तल्लक्षणम्–उपजातिश्छन्दः–'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' इति लक्षणात् ।।1।।

अनुवाद – (नान्दी के अव्यवहितोत्तरकाल में सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार – जो देवी सीता के हरण किये जाने के कारण समस्त जगत् को रुलाने वाले रावण के शत्रु हैं, पराक्रम में अप्रमेय, रावणानुज विभीषण जिनका आत्मीय है अथवा सीता के साथ जिन्होंने रावण को मारकर लोक को आनन्दित किया। सीता का क्षेम सम्पादन करने वाले जो सुमन्त्र नामक अपने लापता पिता के सारथी से अथवा सुन्दर मन्त्रणा से सन्तुष्ट हैं। लक्ष्मण जिनके सन्निधान में हैं अथवा जो उत्तम लक्षण से युक्त हैं। जो इस संसार के भरण-पोषण करने से भरतस्वरूप हैं ऐसे वानरराज सुग्रीव से युक्त अथवा मनोहर ग्रीवा वाले सर्वत्र रमणकर्ता भगवान् श्रीराम हम सभी नटों की एवं आप सभी सामाजिकों की जन्म-जन्म में रक्षा करें।

शब्दार्थ – यः = जो, देव्या = देवी सीता के कारण, रावणार्यप्रतिमः = रावण के शत्रु तथा अद्वितीय वीर, विभीषणात्मा = शत्रुओं के लिए भयंकर, सीताभवः = सीता को सुख देने वाला, सुमन्त्रतुष्टः = अच्छी मन्त्रणा से सन्तुष्ट होने वाले, सहलक्ष्मणः भरतश्च = लक्ष्मण तथा भरत के साथ, सुग्रीवरामः = सुन्दर ग्रीवा वाले भगवान् श्रीराम, अनुसर्गम् = सदैव, पातु = सबकी रक्षा करें।

टिप्पणी – रावणारिः = रावणस्य अरिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), अप्रतिमः = न अस्ति प्रतिमः उपमान यस्य सः (बहुव्रीहि समास), विभीषणात्मा = विभीषणः आत्मा यस्य सः (बहुव्रीहि समास), सुमन्त्रतुष्टः = सुमन्त्रेण तुष्टः (तृतीया तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत नान्दी पद्य में 'अप्रतिमः' शब्द का प्रयोग करके कवि ने प्रतिमानाटक के नाम की ओर भी संकेत किया है। यह शब्द तृतीय अंक में प्रस्तुत प्रतिमाओं के दृश्य की ओर संकेत कर रहा है, इसलिए इसमें मुद्रा अलंकार है। 'सीताभवः' शब्द में हेतु और हेतुमान में अभेद वर्णित होने के कारण हेतु अलंकार भी है। 'विभीषणात्मा' इत्यादि पदों में साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग है, अतः परिकर अलंकार की भी प्रतीति हो रही है।

इस श्लोक में राम के विशेषण के रूप में प्रयुक्त शब्द राम की विशेषताएं तो बताते ही हैं। साथ ही साथ नाटक के मुख्य पात्रों से भी पाठकों को अवगत कराते हैं।

प्रस्तुत पद्य में उपजाति छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।''** जिस छन्द के चरणों में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के लक्षण चरणभेद से उपलब्ध हों, वहाँ उपजाति छन्द होता है।

मूलपाठ – (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य)

आर्ये! इतस्तावत्।

(प्रविश्य)

नटी – आर्य! इयमस्मि। (अय्य! इअम्हि।)

सूत्रधारः – आर्ये! इममेवेदानीं शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत्।

नटी – आर्य! तथा (अय्य! तह।) (गायति)

सूत्रधारः – अस्मिन् हि काले,

चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा।

अन्वयः – काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा हंसी पुलिनेषु चरति।

व्याख्या – काशांशुकवासिनी = काशपुष्पप्रकाशा जले वसतीति काशांशुकवासिनी, सुसंहृष्टा = नितरां मुदिता सती, हंसी = वराटा, पुलिनेषु नदीसैकतेषु, चरति = यथेच्छमितस्ततो विहरति।। 2।।

अनुवाद –

(नेपथ्य की ओर देखकर)

आर्ये। इधर आओ।

(प्रवेश कर)

नटी – आर्य! यह लो मैं आ गई।

सूत्रधार – आर्ये! इस शरद् ऋतु के सम्बन्ध में कुछ गान सुनाओ।

नटी – आर्य! मुझे आपकी आशा स्वीकार है अभी गाती हूँ।

सूत्रधार – इस समय पुष्पित काशसमूहों वाले नदी के बालुकामय तट पर हंसिनी परम प्रसन्न हो इस प्रकार विहार कर रही है।। 2।।

मूलपाठ – **(नेपथ्ये)**

आर्य! आर्य! (अय्य! अय्य!)

(आकर्ण्य)

सूत्रधारः – भवतु, विज्ञातम्।

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ।।2।।

(निष्क्रान्तौ)

स्थापना।

अन्वयः – मुदिता त्वरिता प्रतिहाररक्षी इव नरेन्द्रभवने (चरति)।।2।।

व्याख्या – मुदिता = मोदमाना रामराज्याभिषेकप्रसङ्गेन त्वरिता = स्वकार्ये ससंभ्रमम् संलग्ना, प्रतिहाररक्षी–प्रतिहारं = द्वारं रक्षति सा या। नरेन्द्रभवने नरेन्द्रस्य = नृपतेः दशरथस्य भवने = प्रासादे यथा चरति तथा हंसी अपि चरतीति पूर्वेणान्वयः। अत्र पूर्णोपमालङ्कारः। उपमानः साधर्म्यस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम् इति तल्लक्षणम्। अनुष्टुप् छन्दः। श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोरिति लक्षणात्। निष्क्रान्ताविति = रङ्गस्थलाद् गताविव्यर्थः।

अनुवाद – (नेपथ्य में)

आर्य! आर्य!

(सुनकर)

सूत्रधार – अच्छा, जान लिया। जिस प्रकार दशरथ के राजमहल में रामराज्याभिषेक के समाचार से प्रसन्न हुई द्वारपालिका श्वेत वस्त्र धारण कर शीघ्रता से इतस्ततः संचरण कर रही हैं।।2।।

शब्दार्थ – चरति = विचरण कर रही है, पुलिनेषु = तटों पर, काशांशुकवासिनी = काश के फूलों के समान वस्त्रों को धारण करने वाली, सुसंहृष्टा = अतीव प्रसन्न, मुदिता = प्रसन्न, त्वरिता = जल्दी-जल्दी अपना कार्य करने में तत्पर, प्रतिहाररक्षी =

द्वार में रहने वाली सेविका, नरेन्द्रभवने = महाराज दशरथ के महल में, चरति = विचरण कर रही है।

टिप्पणी – प्रतिहारक्षी = प्रतिहारं रक्षति स्त्री इति प्रतिहारक्षी (उपपद तत्पुरुष), नरेन्द्रभवने = नरेन्द्रस्य भवने (षष्ठी तत्पुरुष)।

प्रस्तुत श्लोक में हंसीव उपमेय, प्रतिहाररक्षी उपमान तथा इव उपमा वाचक शब्द है। उपमेय का उपमान से साम्य वर्णित होने के कारण उपमा अलंकार है।

प्रस्तुत पद्य में अनुष्टुप् छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है –

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्वितचुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयात् एतत् पद्यस्य लक्षणम्।।

अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में पाँचवाँ वर्ण लघु, छठाँ गुरु और दूसरे तथा तीसरे चरणों में सातवाँ वर्ण लघु होता है वहाँ अनुष्टुप् छन्द होता है।

(तदनन्तर दोनों का रङ्गस्थान से प्रस्थान)

स्थापना समाप्त।

मूलपाठ – **(प्रविश्य)**

प्रतिहारी – आर्य, क इह काञ्चुकीयानां सन्निहितः। (अय्य! को इह कञ्चईआणं सण्णिहिदो।)

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः – भवति! अयमस्मि। किं क्रियताम् ?

प्रतीहारी – आर्य! महाराजो देवासुरसङ्ग्रामेष्वप्रतिहतमहारथो दशरथ आज्ञापयति– शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभावसंयोगकारका अभिषेकसम्भारा आनीयन्तामिति। (अय्य ! महाराओ देवासुरसंगामेसु अप्पडिहदमहारहो दसरहो आणवेदि–सिग्घं भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जपहावसञ्जोअकारआ अहिसेअसम्भारा आणीअन्तु त्ति।)

अनुवाद – (प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी – आर्य! कञ्चुकियों में यहाँ कौन है?

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी – पूज्ये! यहाँ पर मैं हूँ। कहिये क्या करना है?

प्रतिहारी – आर्य! देवासुरसंग्राम में भी जिनके रथ का वेग किसी के द्वारा अवरुद्ध नहीं किया गया उन महाराज दशरथ की आज्ञा है कि शीघ्र ही श्रीराम के युवराजपद के प्रभुत्वशक्ति को प्रत्यक्षरूप से प्रकट करने वाले छत्र-चामरादि विशेष राजचिह्न एवं अभिषेक के लिये सरित्समुद्रादि तीर्थों के जल तथा सर्वोषधियाँ इत्यादि सम्भार एकत्रित किये जाने चाहिये।

मूलपाठ –

काञ्चुकीयः – भवति! यदाज्ञप्तं महाराजेन तत् सर्वं सङ्कल्पितम्।पश्य –

छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं

न्यस्ता हेममयाः सदर्भकुसुमास्तीर्थाम्बुपूर्णा घटाः।
युक्तः पुष्यरथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः
सर्वस्यास्य हि मङ्गलं स भगवान् वेद्यां वसिष्ठः स्थितः।।3।।

अन्वयः – सव्यजनं छत्रं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितम्। सदर्भकुसुमाः तीर्थाम्बुपूर्णा हेममया घटा न्यस्ताः। पुष्यरथश्च युक्तः। मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः। अस्य सर्वस्य हि मङ्गलं स भगवान् वसिष्ठः वेद्यां स्थितः (अस्ति)।।3।।

व्याख्या – छत्रमिति– सव्यजनम् = व्यजनेन सहितम् सव्यजनम् = चामर सहितम्, छत्रम् = राज्ञाम् शिरसि धारणीयम् श्वेतातपत्रम्। सनन्दिपटहम्–नन्दयतीति = नन्दी तदर्थ यत् = पटहः = आनकः तेन सहितम्, भद्रासनम्–भद्रं = कल्याणकारकम्, मणिखचितम् च तदासनं चेति भद्रासनम् कल्पितम्–उपस्थापितम्। सदर्भकुसुमाः–दर्भाश्च कुसुमानि च दर्भकुसुमानि ताभ्यां सहिताः कुशकुसुमयुताः, तीर्थाम्बुपूर्णाः–तीर्थानाम् = समुद्रसरिताम् अम्बुभिः = जलैः पूर्णाः = भरिताः हेममयाः = सुवर्णरचिताः घटाः = माङ्गलिकस्नानार्थं कलशाः न्यस्ताः = स्थापिताः। पुष्यरथश्च–यच्च रथं समराय न भवति असौ पुष्यरथः–क्रीडाविहार रथः, युक्तः = सज्जीकृतः। मन्त्रिसहिताः–मन्त्रिभिः–सचिवैः सहिताः, पौराः = पुरेभवाः = नगरनिवासिनः, सम्भ्रान्त जनाः = समभ्यागताः एकत्रीभूय अभिषेकभूमौ समागताः। अस्य शीघ्रभाविनोऽभिषेकसंस्कारस्य, सर्वस्य कार्यकलापस्य हि निश्चयेन मङ्गलम् = मङ्गलानुष्ठापकः मङ्गलस्वरूपो वा भगवान् वसिष्ठमहर्षिः वेद्याम् = अभिषेकार्थमुपकल्पितायां भूमौ, स्थितः = समागतः। अत्र यथावद् वस्तु वर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः। मङ्गलमित्यत्र हेतुहेतुमतोरभेदवर्णनात् हेतुरलङ्कारोऽपि। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।।3।।

अनुवाद – कञ्चुकी – पूज्ये! श्रीमान् महाराज के आज्ञानुकूल अभिषेक की सारी सामग्री प्रस्तुत की जा चुकी हैं। देखिये –

चँवर के सहित छत्र, पटह से युक्त स्वर्णमय सिंहासन, कुश एवं कुसुमों से युक्त नाना तीर्थों के जल से परिपूर्ण सुवर्णमय अभिषेक कलश तथा घोड़ों से जुता हुआ क्रीडा-विहारवाला सुसज्जित यह पुष्यरथ है। मन्त्रिगणों के साथ नगरनिवासी सम्भ्रान्त सज्जन लोग आये हुए हैं। इतना ही नहीं, इन समस्त मङ्गलकृत्यों के विधाता स्वयं माङ्गलिक स्वरूपधारण किये ये भगवान् वसिष्ठ अभिषेक की वेदी पर बैठे हुए हैं ।।3।।

शब्दार्थ – सव्यजनम् = चवँर सहित, छत्रम् = राजा के द्वारा धारण किया जाने वाला छत्र, सनन्दिपटहं = आनन्द प्राप्त करने वाले पटः से युक्त, भद्रासने = राजसिंहासन, सदर्भकुसुमाः = कुश और पुष्पों के सहित, तीर्थाम्बुपूर्णा = अनेक तीर्थों के जलों से परिपूर्ण, हेममया घटा = सोने के घड़े, पुष्परथः = क्रीडा रथ, पौराः = नगरवासी लोग, वेद्याम् = यज्ञ वेदि पर।

टिप्पणी – मन्त्रिसहिताः = मन्त्रिभिः सहिताः (तृतीया तत्पुरुष), सव्यजनम् = व्यजनेन सहितम् (तृतीया तत्पुरुष), तीर्थाम्बुपूर्णा = तीर्थानाम् अम्बुभिः पूर्णा (तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत पद्य में राज्याभिषेक की वस्तुओं का स्वभाविक वर्णन होने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार है।

प्रस्तुत पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है– **'सूर्याश्वैर्मसजस्ताः सगुरवः शार्दूलविकीडितम्'** अर्थात् जिस छन्द में मगण, सगण, जगण, दो तगण और एक गुरु वर्ण हो, बारहवें और सातवें वर्ण पर यति हो वहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द होता है।

मूलपाठ –

प्रतिहारी – यद्येवं, शोभनं कृतम्। (जइ एव्वं, सोहणं किदं।)

काञ्चुकीयः – हन्त भोः!

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः।

रामाभिधानं मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता ।।4।।

अन्वयः – इदानीं भूमिपालेन रामाभिधानं शशाङ्कं मेदिन्याम् अभिषिञ्चता प्रजाः कृतकृत्याः कृताः ।।4।।

व्याख्या – इदानीमिति–इदानीम् = अधुना, भूमिपालेन = राज्ञा दशरथेन, रामाभिधानम् = रामनामकम्, शशाङ्कम् = शीतलशीलसौन्दर्यप्रियदर्शनत्वादिगुण विशिष्टं भूचन्द्रमसम्, मेदिन्याम् = पृथिव्याम्, यौवराज्यपदे अभिषिञ्चता = अभिषेक कुर्वता, प्रजाः = प्रकृतयः, कृतकृत्याः सफलमनोरथाः, कृताः। क्रियमाणे नानेन रामराज्याभिषेकेण प्रजानामभिलषितं सिद्धयतीति भावः। अत्र अभिषिञ्चता इत्यत्र शतृप्रत्ययेनानुपदमेव भवन्नभिषेकः सूचितः। अत्र रामे चन्द्रारोपात् रूपकालङ्कारः। 'रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे' इति तल्लक्षणात्। किञ्च प्रजानां कृतकृत्यताकरणे उत्तरवाक्यार्थस्य हेतुत्वात् काव्यलिङ्गमपि 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्ग निगद्यते' इति तल्लक्षणात्। भूमिपालेनेति विशेष्यस्य साभिप्रायत्वात्परिकरोऽपि। अनुष्टुप् छन्दः ।।4।।

अनुवाद –

प्रतिहारी – यदि ऐसा है तब तो प्रसन्नता की बात है।

कञ्चुकी – यह बड़े हर्ष का विषय है–

महाराज ने शैत्य आह्लादकत्वादि गुणविशिष्ट इस पृथ्वी के चन्द्रस्वरूप श्रीराम का राज्याभिषेक करते हुए अपनी समस्त प्रजाओं का अभिलषित मनोरथ परिपूर्ण किया है।।4।।

शब्दार्थ – इदानीम् = इस समय राम का राज्याभिषेक करके, भूमिपालेन = महाराज दशरथ के द्वारा, मेदिन्याम् = पृथिवी पर, रामाभिधानम् = जिनका नाम राम है, अभिषिञ्चिता= युवराज पद पर अभिषेक करके, कृत्यकृत्याः = सिद्ध मनोरथ वाले।

टिप्पणी – भूमिपालेन = भूमिं पालयति इति भूमिपालः, रामाभिधानम् = राम एव अभिधानं यस्य (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत पद्य में राम पर चन्द्रमा का आरोप होने के कारण रूपक अलंकार है तथा हेतु सहित प्रजा की कृतकृत्यता का वर्णन होने के कारण काव्यलिंग अलंकार है। प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

प्रतिहारी – त्वरतां त्वरतामिदानीमार्यः। (तुरवदु तुरवदु दाणिं अय्या।)

काञ्चुकीयः – भवति! इदं त्वर्यते। (निष्क्रान्तः)

प्रतिहारी – (परिक्रम्यावलोक्य) आर्य! सम्भवक! सम्भवक! गच्छ त्वमपि महाराजवचनेनार्यपुरोहितं यथोपचारेण त्वरय (अन्यतो गत्वा) सारसिके! सारसिके! सङ्गीतशालां गत्वा नाटकीयेभ्यो विज्ञापय–कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवतेति। यावदहमपि सर्वं कृतमिति महाराजाय निवेदयामि। (अय्य! संभवअ ! संभवअ ! गच्छ, तुवं पि महाराअवअणेण अय्यपुरोहिदं जहोपआरेण तुवरेहि। सारसिए! सारसिए! सङ्गीदसालं गच्छिअ नाडईआणं विण्णवेहिकालसवादिणा णाडएण सज्जा होइ त्ति। जाव अहं पि सव्वं किदं त्ति महाराअस्स णिवेदेमि।

(निष्क्रान्ता।)

(ततः प्रविशत्यवदातिका वल्कलं गृहीत्वा)

अवदातिका – अहो अत्याहितम्। परिहासेनापीमं वल्कलमुपनयन्त्या ममैतावद् भयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः। हसितुमिवेच्छामि। न खल्वेकाकिन्या हसितव्यम्। (अहो! अच्चाहिदं परिहासेण वि इमं वक्कलं उवणअन्तीए मम एत्तिअं भअं आसीं, किं पुण लोभेण परधणं हरन्तस्स। हसिदुं विअ इच्छामि। ण खु एआइणीए हसिदव्वं।)

अनुवाद –

प्रतिहारी – आर्य! अभी-अभी इसी समय शीघ्रता करो।

कञ्चुकी – पूज्ये! यह लो अभी-अभी शीघ्र ही किया। (ऐसा कहकर प्रस्थान करता है)

प्रतिहारी – (घूमकर, इधर-उधर देखकर) आर्य संभवक! संभवक! जाओ तुम भी महाराज की आज्ञा के अनुसार पूज्य पुरोहित जी को ससम्मान शीघ्र लेकर यहाँ आओ। (पुनः दूसरी ओर जाकर) सारसिके! सारसिके! तुम भी सङ्गीतशाला में जाकर अभिनय करने वाले नटों को सूचित करो कि वे भी इस अभिषेक समयोचित नाटक के लिये समुद्यत हो जायें। अच्छा! अब मैं 'सारी तैयारी पूर्ण हो चुकी है' इसकी सूचना महाराज को जाकर दे दूँ।

(इतना कहकर वहाँ से चली जाता है)

(वल्कल लिए अवदातिका का प्रवेश)

अवदातिका – ओह महान् अनर्थ हो गया जो परिहास में भी दूसरे का वल्कल उठा लेने से मुझे इतना भयभीत होना पड़ा। (जब परिहास में दूसरे का वल्कल लेने मात्र से मेरी यह दशा है तो) जो लोग दूसरे की वस्तु का अपहरण कर लेते हैं तो उनकी दशा कैसी होगी ? अच्छा! अब मेरी हँसने जैसी इच्छा हो रही है; किन्तु अकेले नहीं हँसना चाहिये। (क्योंकि हँसी का आनन्द तो अपने परिवार के मध्य में आता है)

मूलपाठ –

(ततः प्रविशति सीता सपरिवारा)

सीता – हञ्जे! अवदातिका परिशङ्कितवर्णेव दृश्यते। किन्नु खल्विवैतत्? (हञ्जे! ओदादिआ परिसङ्किदवण्णा विअ दिस्सइ। किं णु हु विअ एदं।)

चेटी – भट्टिनि! सुलभापराधः परिजनो नाम। अपराद्धा भविष्यति। (भट्टिणि! सुलहावराहो परिअणो णाम। अवरज्झा भविस्सदि।)

सीता – नहि नहि, हसितुमिवेच्छति।(णहि णहि, हसिदुं विअ इच्छदि।)

अवदातिका – (उपसृत्य) जयतु भट्टिनी! भट्टिनि! न खल्वहमपराद्धा। (जेदु भट्टिणी! भट्टिणि ! ण खु अहं अवरज्झा।)

सीता – का त्वां पृच्छति। अवदातिके! अवदातिके! किमेतद् वामहस्तपरिगृहीतम्। (का तुमं पुच्छदि। ओदादिए! ओदादिए! किं एदं वामहत्थपरिगहिदं।)

अवदातिका – भट्टिनि! इदं वल्कलम्। (भट्टिणि! वक्कलं।)

सीता – वल्कलं कस्मादानीतम्। (वक्कलं किस्स आणीदं।)

अवदातिका – शृणोतु भट्टिनि। नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा निर्वृत्तरङ्गप्रयोजनमशोकवृक्षस्यैकं किसलयमस्माभिर्याचितासीत्। न च तया दत्तम्। ततोऽर्हत्यपराध इतीदं गृहीतम्। (सुणादु भट्टिणी। णेवच्छपालिणी अय्यरेवा णिब्बुत्तरङ्गप्पओअणं असोअरुक्खस्स एक्कं किसलअं अम्हेहि जाइदा आसि। ण अ ताए दिण्णं। तदो अरिहदि अवराहो त्ति इदं गहिदं।)

सीता – पापकं कृतम्। गच्छ, निर्यातय। (पावअं किदं। गच्छ, णिय्यादेहि।)

अवदातिका – भट्टिनि! परिहासनिमित्तं खलु मयैतदानीतम्। (भट्टिणि? परिहासणिमित्तं खु मए एदं आणीदं।)

अनुवाद –

(परिचारिका सहित सीता का प्रवेश)

सीता – हल्ले चेटी! आज अवदातिका अपनी आकृति से सशङ्कित जैसी दिखाई पड़ती है यह क्या बात है ?

चेटी – महारानी जी! भृत्यवर्गों से कुछ न कुछ अपराध होते ही रहते हैं। इससे भी कुछ अपराध हुआ होगा।

सीता – नहीं नहीं। यह तो हंसना चाहती है।

अवदातिका – सीता के समीप जाकर जय हो महारानी जी! मैंने कोई भी अपराध नहीं किया।

सीता – तुझसे अपराध के विषय में कौन पूछता है? अवदातिके! बता यह बायें हाथ में क्या ले रखी है?

अवदातिका – महारानी जी यह वल्कल है।

सीता –तू वल्कल कहाँ से ले आई?

अवदातिका – भट्टिनि सुनिये। नेपथ्यरक्षिका आर्यरेवा से हम लोगों ने रङ्गशाला का कार्य सम्पन्न हो जाने पर उससे बचा हुआ एक अशोक का पत्ता माँगा था किन्तु उसने हमें दिया नहीं। यह उसका अपराध था। इसी अपराध के उचित दण्डस्वरूप हमने उसके वल्कल का अपहरण किया है।

सीता – तो तुमने यह महान् पापकर्म किया। अच्छा अभी जाओ उसे लौटा दो।

अवदातिका – भट्टिनि! मैंने चोरी की दृष्टि से नहीं, अपितु परिहास करने के लिये वह वल्कल लिया है। फिर पाप कैसे?

मूलपाठ –

सीता – उन्मत्तिके! एवं दोषो वर्धते। गच्छ, निर्यातय, निर्यातय। (उन्मत्तिए! एव्वं दोसो वड्ढइ। गच्छ, णिय्यादेहि णिय्यादेहि।)

अवदातिका – यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (प्रस्थातुमिच्छति)। (जं भट्टिणी आणवेदि।)

सीता – हला एहि तावत्। (हला एहि दाव।)

अवदातिका – भट्टिनि! इयमस्मि। (भट्टिणि! इअम्हि।)

सीता – हला! किन्नु खलु ममापि तावत् शोभते। (हला! किंणु हु मम वि दाव सोंहदि।)

अवदातिका – भट्टिनि! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम। अलङ्करोतु भट्टिनि। (भट्टिणि! सव्वसोहणीअं सुरूवं णाम। अलङ्करोदु भट्टिणी।)

अनुवाद –

सीता – पगली! पाप तो इसी प्रकार से बढ़ते हैं, जल्दी जाकर उसको वल्कल लौटा दो, अवश्य लौटा दो।

अवदातिका – जैसी महारानी जी की आज्ञा। (इतना कहकर जाना चाहती है।)

सीता – सखि! जरा इधर तो आ।

अवदातिका – महारानी जी यह आई।

सीता – सखि, क्या यह मुझे अच्छा लगेगा?

अवदातिका – महारानी जी! सौन्दर्य तो उसी को कहते ही हैं जिस पर सब कुछ (चाहे वह सुन्दर हो अथवा असुन्दर हो) अच्छा लगे। आप इसे पहन कर देखें तो सही।

मूलपाठ –

सीता – आनय तावत्। (गृहीत्वाऽलङ्कृत्य) हला! पश्य, किमिदानीं शोभते? (आणेहि दाव! हला! पेक्ख, किं दाणिं सोहदि?)

अवदातिका – तव खलु शोभते नाम। सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम्। (तव खु सोहादि णाम। सौवण्णिअं विअ वक्कलं संवुत्तम्।)

सीता – हज्जे! त्वं किञ्चिन्न भणसि। (हज्जे! तुवं किञ्चि ण भणासि।)

चेटी – नास्ति वाचा प्रयोजनम्। इमानि प्रहर्षितानि तनूरुहाणि मन्त्रयन्ते। (पुलकं दर्शयति।) (णत्थि वाआए पओअणं। इमे पहरिसिदा तणुरुहा मन्तेन्ति।)

सीता – हज्जे! आदर्श तावदानय। (हज्जे! आदंसअं दाव आणेहि।)

अनुवाद –

सीता – अच्छा ले आओ। (चेटी के हाथ से वल्कल लेकर तथा पहनकर) अच्छा देखो यह मुझे शोभा दे रहा है क्या?

अवदातिका – आपको तो यह बहुत अच्छा लग रहा है। अरे! यह वल्कल तो (आपकी शरीर की कान्ति से) सुवर्णमय प्रतीत हो रहा है।

सीता – (दूसरी चेटी से) सखि! तुम इस विषय में मौन क्यों हो?

चेटी – महारानी जी! तुम्हारा रूप वर्णन से परे है। ऐसा हमारे शरीर के रोमोद्गम से प्रतीत हो रहा है। (इतना कहकर अपने पुलकित शरीर को दिखाती है।)

सीता – सखि! दर्पण तो ला।

मूलपाठ –

चेटी – यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (निष्क्रम्य प्रविश्य) भट्टिनि! अयमादर्शः। (जं भट्टिणि आणवेदि। भट्टिणि! अजं आदंसओ।)

सीता – (चेटीमुखं विलोक्य) तिष्ठतु तावदादर्शः। त्वं किमपि वक्तुकामेव। (चिट्ठदु दाव आदंसओ। तुवं किं वि वत्तुकामो विअ।)

चेटी – भट्टिनि! एवं मया श्रुतम्। आर्यबालाकिः कञ्चुकी भणति अभिषेकोऽभिषेक इति। (भट्टिणि! एवं मए सुदं। अय्यबालाई कञ्चुई भणादि अहिसेओ अहिसेओ त्ति।)

सीता – कोऽपि भर्ता राज्ये भविष्यति। (को वि भट्टा रज्जे भविस्सदि।)

(प्रविश्य अपरा)

चेटी – भट्टिनि! प्रियाख्यानिकं प्रियाख्यानिकम्। (भट्टिणि! पिअक्खाणिअं पिअक्खाणिअं।)

अनुवाद –

चेटी – आपकी जैसी आज्ञा। (वहाँ से हटकर पुनः सीता के पास जाकर) महारानी जी! लीजिये। यह रहा आपके लिये दर्पण।

सीता – (चेटी मुंह की ओर निहारते हुए) दर्पण रहने दो। मालूम होता है कि तुम कुछ कहना चाहती हो।

चेटी – महारानी जी! मैंने ऐसा आज सुना है आर्य बालाकि कञ्चुकी को कह रहे थे कि अभिषेक है अभिषेक।

सीता – होगा किसी का राज्याभिषेक।

(दूसरी चेटी का प्रवेश)

दूसरी चेटी – महारानी जी! महान् शुभ समाचार है, महान् शुभ समाचार है।

मूलपाठ –

सीता – किं किं प्रतीष्य मन्त्रयसे। (किं किं पडिच्छिअ मन्तेसि।)

चेटी – भर्तृदारकः किलाभिषिच्यते। (भट्टिदारओ किल अहिसिञ्चीअदि।)

सीता – अपि तातः कुशली? (अवि तादो कुसली।)

चेटी – महाराजेनैवाभिषिच्यते। (महाराएण एव्व अहिसिञ्चीअदि।)

सीता – यद्येवं, द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम्। विशालतरमुत्सङ्गं कुरु। (चइ एव्वं, दुदीअं मे पिअं सुदं। विसालदरं उच्छङ्गं करेहि।)

चेटी – भट्टिनि! तथा। (तथा करोति) (भट्टिणि! तह।)

सीता – (आभरणान्यवमुच्य ददाति)

अनुवाद –

सीता – क्या मन में छिपाये बोल रही हैं।

चेटी – राजकुमार श्रीराम राज्य पर अभिषिक्त होने वाले हैं।

सीता – अरी बता। पिता जी तो सकुशल हैं।

चेटी – महाराज ही तो स्वयं अभिषेक करने जा रहे हैं।

सीता – यदि ऐसी बात है तब तो अभिषेक के अतिरिक्त यह दूसरा प्रिय समाचार सुनायी पड़ा। अच्छा अपना आंचल अच्छी तरह फैला।

चेटी – महारानी की जो आज्ञा। (अंचल पसारती है।)

सीता – (अपने शरीर का आभूषण उतारकर प्रदान करती हैं।)

मूलपाठ –

चेटी – भट्टिनि! पटहशब्द इव। (भट्टिणी ! पटहसद्दो विअ।)

सीता – स एव। (सो एव्व।)

चेटी – एकपदे अवघट्टिततूष्णीकः पटहशब्दः संवृत्तः। (एक्कपदे ओघटिओ तुहीओ पटहसद्दो संवुत्तो।)

सीता – को नु खलूद्घातोऽभिषेकस्य। अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम। (को णु खु उग्घादो अहिसेअस्स। अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम।)

चेटी – भट्टिनि! एवं मया श्रुतं। भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं गमिष्यतीति। (भट्टिणि! एवं मऐ सुदं–भट्टिदारअं अहिसिञ्चिअ महाराओ वणं गमिस्सदि त्ति।)

अनुवाद –

चेटी – महारानी जी पटह के शब्द जैसा शब्द सुनाई पड़ रहा है।

सीता – मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।

चेटी – किन्तु अभी एक ही बार बजकर बन्द भी हो गया।

सीता – अभिषेक में कौन-सा विघ्न आ पड़ा। अथवा अनेक प्रकार की सम्भावनायें राजकुलों में होती रहती हैं।

चेटी – महारानी जी! मैंने ऐसा भी सुना है कि महाराज राजकुमार का अभिषेक कर सद्यः वन चले जायेंगे।

मूलपाठ –

सीता – यद्येवं, न तदभिषेकोदकं, मुखोदकं नाम! (जइ एव्वं, ण सो अहिसेओदआ, मुहोदअं णाम।)

(ततः प्रविशति रामः)

रामः – हन्त भोः!

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लङ्घिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये घटे।
राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो ! विस्मयः ? ।।5।।

अन्वयः – गुरुजने स्थिते पटहे आरब्धे भद्रासने लङ्घिते घटे स्कन्धोच्चारण नम्यमानवदनप्रच्योतितोये राज्ञा आहूय मयि विसर्जिते जनः मे धैर्येण विस्मितः। भोः! यदि स्वः पुत्रः पितुः वचः कुरुते तत्र कः विस्मयः ।।5।।

व्याख्या – आरब्धे इति–गुरुजने वसिष्ठवामदेवादिपुरोहितगणे अभिषेक मङ्गलावलोकनोत्सुकतया स्थिते = उपस्थिते भद्रासने = सिंहाकारमणिखचित स्वर्णमयपीठे लङ्घिते = आरूढे मयेति शेषः। घटे = नानातीर्थजलपरिपूर्णकलशे स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये–स्कन्धे यत् उच्चारणं = उन्नयनम् उत्थापनं वा तेन नम्यमानं = सौकर्यसम्पादनाय नम्रीक्रियमाणं यद् वदनम् = गलोर्ध्वदेशः तस्मात् प्रच्योतितोये = पातोन्मुखसलिले, एवंभूते अभिषेके प्रवृत्ते राज्ञा = महाराजेन आहूय आकार्य विसर्जिते भद्रासनादवतार्य वनं गच्छेत्या दिष्टे मयि = रामे हर्षविषादरहिते सति जनः = तदानीमुपस्थितजनसमूहः मे धैर्येण स्वनिष्ठातोऽविचलनं धैर्यं तेन गाम्भीर्येण–यदुक्तम्, 'आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च। मया न लक्षितस्तस्य वदने स्वल्पविक्रिया। विस्मितः आश्चर्यचकितोऽभूत्। भोः स्वः = आत्मीयः पुत्रः यदि पितुः वचनम् = आदेशम् कुरुते = अनुतिष्ठति तत्र विषये कः विस्मयः = कीदृगाश्चर्यम्। पितुराज्ञापालनमेव पुत्र कर्त्तव्यम् एतदेव कृत्वा मया किमप्यपूर्वं नाचरितमतस्तत्र किमाश्चर्यमिति भावः। एतच्च पितुराज्ञाकरणम् पुत्रस्य श्रेयसे भवति। यदुक्तमभियुक्तैः 'पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः' इति। अत्र काव्यलिङ्गलङ्कारः। तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम्। को विस्मयः इति काक्वा वक्रोक्तिरपि। शार्दूलविक्रीडितं छन्द।।5।।

अनुवाद –

सीता – यदि ऐसी बात है तो यह अभिषेकार्थ आया हुआ जल दुःख के जल में परिणत हो जायेगा।

(राम का प्रवेश)

राम – कैसे हर्ष की बात है कि–

पूज्य गुरुजनों की उपस्थिति में जब पटह बाजा रूप बाजा बजने लगा मैं सिंहासन पर आरूढ हो गया, कन्धे पर उठाये गये नीचे मुख किये तीर्थजलपूर्ण कलशों से जल

उड़ेलकर जब मेरा अभिषेक–कार्य सम्पन्न कर रहे थे उसी समय महाराज ने मुझे उस सिंहासन से उतारकर वन जाने की आज्ञा देकर मेरा परित्याग कर दिया। उस समय हर्षविषादरहित मुझे देखकर वहाँ उपस्थित दर्शक लोग आश्चर्यचकित से रह गये। भला इसमें आश्चर्य की क्या बात है? अपने पुत्र को पिता की आज्ञा माननी ही चाहिये यह तो उसका कर्तव्य ही है। अतः मैंने कौन सा अपूर्व कार्य कर दिखाया जिससे लोगों को अचम्भित होना पड़ा।।5।।

शब्दार्थ – पटहे = नगाड़ा, आरब्धे = बजना शुरू होने पर, भद्रासने = सिंहासन पर, स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये = स्कन्धों तक उठाकर घड़े के मुख से अभिषेक के लिए जल गिरने पर, आहूय = बुलाकर, विस्मितः = अत्यन्त चकित, स्वःपुत्र = अपना पुत्र, लङ्घिते = बैठने पर।

टिप्पणी – स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये = स्कन्धे उच्चारणं तेन नम्यमानं यद् वदनं तस्मात् प्रच्योति तोये (तत्पुरुष गर्भ बहुव्रीहि), भद्रासने = भद्रं च तत् आसनम् (कर्मधारय समास)।

प्रस्तुत श्लोक में पिता की आज्ञा का पालन करना ही पुत्र का धर्म है, इत्यादि का प्रतिपादन होने के कारण काव्यलिङ्ग अलंकार है। को विस्मयः, इसमें आश्चर्य क्या है? में काकु वक्रोक्ति अलंकार है और राज्याभिषेक की समस्त सामग्री के विद्यमान होने पर भी राज्याभिषेक न हो पाने के कारण विशेषोक्ति अलंकार है। प्रस्तुत श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

मूलपाठ –

'विश्रम्यतामिदानीं पुत्रे'ति स्वयं राज्ञा विसर्जितस्यापनीतभारोच्छ्वसितमिव मे मनः। दिष्ट्या स एवास्मि रामः, महाराज एव महाराजः। यावदिदानीं मैथिलीं पश्यामि।

अनुवाद –

उस समय महाराज ने स्वयं ही 'पुत्र! अभिषेक कार्य से विरत रहो' ऐसा कहकर मुझे विदा कर दिया। अस्तु बड़े आनन्द की बात है कि राज्य के रक्षणावेक्षणादि भार से मुक्त हो जाने के कारण मेरा मन उन्मुक्त वायुमण्डल में अनुप्राणित हो रहा है। अब मैं वही राम हूँ जो अभिषेक के पूर्व था और महाराज भी वही महाराज हैं जैसा कि अभिषेक के पहले इस राज्य के शासक थे। अच्छा, मिथिलाधिराजतनया को देखना चाहता हूँ।

मूलपाठ –

अवदातिका – भट्टिनि! भर्तृदारकः खल्वागच्छति। नापनीतं वल्कलम्? (भट्टिणि! भट्टिदारओ खु आगच्छइ। णावणीदं वक्कलं?)

रामः – मैथिलि! किमास्यते?

सीता – हम् आर्यपुत्रः। जयत्वार्यपुत्र। (हं अय्यउत्तो। जेदु अय्यउत्तो।)

रामः – मैथिलि! आस्यताम्। (उपविशति)

सीता – यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति। (उपविशति) (जं अय्यउत्तो आणवेदि।)

अवदातिका – भट्टिनि! स एव भर्तृदारकस्य वेषः। अलीकमिवैतद् भवेत्। (भट्टिणि! सो एव्व भट्टिदारअस्स वेसो। अलिअं विअ एदं भवे।)

अनुवाद –

अवदातिका – महारानी जी, राजकुमार आ रहे हैं। आपने अभी तक शरीर से इस वल्कल को नहीं उतारा।

राम – मैथिलि! क्या बैठी हो?

सीता – अरे! यह तो आर्यपुत्र हैं। (सीता आसन से उठकर स्वागत करते हुए) आर्यपुत्र, सर्वोत्कर्षेण निवास करें।

राम – मैथिलि। बैठो। (स्वयं भी बैठ जाते हैं)

सीता – जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा (बैठ जाती है)

अवदातिका – महारानी जी! राजकुमार का पहले जैसा ही वेष है कोई परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता। ज्ञात होता है कि वह बात झूठी ही है।

मूलपाठ –

सीता – तादृशो जनोऽलीकं न मन्त्रयते। अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम। (तादिसो जणो अलिअं अ मन्तेदि। अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम।)

रामः – मैथिलि! किमिदं कथ्यते।

सीता – न खलु किञ्चित्। इयं दारिका भणति–अभिषेकोऽभिषेक इति। (ण खु किञ्चि। इअं दारिआ भणादि–अहिसेओ अहिसेओ त्ति।)

रामः – अवगच्छामि ते कौतूहलम्। अस्त्यभिषेकः। श्रूयताम्। अद्यास्मि महाराजेनोपाध्यायामात्यप्रकृतिजनसमक्षमेकप्रकारसंक्षिप्तं कोसलराज्यं कृत्वा बाल्याभ्यस्तमङ्कमारोप्य मातृगोत्रं स्निग्धमाभाष्य 'पुत्र राम! प्रतिगृह्यतां राज्यम्' इत्युक्तः।

अनुवाद –

सीता – वैसे पुरुष कभी झूठ नहीं बोल सकते। अथवा कौन जाने राजकुलों में ऐसी बहुत सी बातें होती ही रहती हैं।

राम – मैथिलि! तुम दोनों क्या-क्या बात कर रही हो।

सीता – कुछ नहीं। यह लड़की 'अभिषेक है अभिषेक है' ऐसा कह रही है।

राम – तुम्हारे मन में जिस अभिषेक वृत्तान्त को सुनने के लिये कुतूहल हैं उसे मैंने समझ लिया। हाँ, आज अभिषेक था परन्तु सुनो। आज महाराज ने आचार्य, मन्त्री, मित्र, पुरोहित तथा पुरवासियों की उपस्थिति में एक छोटा सा दरबार बुलाकर मुझे बाल्यकाल से परिचित अपनी गोद में बिठाकर बहुत ममत्व प्रदर्शित करते हुए मातृगोत्र-कौशल्यानन्दन कौशल्यामातः आदि नामों से सम्बोधित करते हुए कहा– बेटा एकछत्र इस राज्य को स्वीकार करो।

मूलपाठ –

सीता – तदानीम् आर्यपुत्रेण किं भणितम्? (तदाणिं अय्यउत्तेण किं भणिदं?)

रामः – मैथिलि! त्वं तावत् किं तर्कयसि?

सीता – तर्कयाभ्यार्यपुत्रेणाभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःष्वस्य महाराजस्य पादमूलयोः पतितमिति। (तक्केमि अय्यउत्तेण अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ महाराअस्स पादमूलेसु पडिअं त्ति।)

अनुवाद –

सीता – उस समय आर्यपुत्र ने क्या कहा?

राम – मैथिलि! तुम क्या सोचती हो कि मैंने क्या कहा होगा?

सीता – मैं सोचती हूँ आर्यपुत्र इस विषय में कुछ न कहकर लम्बी श्वास लेते हुए महाराज के श्रीचरणों में गिर गये होंगे।

मूलपाठ –

रामः – सुष्ठु तर्कितम्। अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते। तत्र हि पादयोरस्मि पतितः।

समं बाष्पेण पतता तस्योपरि ममाप्यधः।

पितुर्मे क्लेदितौ पादौ ममापि क्लेदितं शिरः।।6।।

अन्वयः – समं तस्य बाष्पेण ममोपरि पतिता मम (बाष्पेण) अधः (पितृ पादयोः) पतता मम शिरः क्लेदितम्। मे पितुः पादौ च क्लेदितौ ।।6।।

व्याख्या – सममिति। समम् = एककालावच्छेदेन। तस्य = पितुः बाष्पेण = अश्रुणा ममोपरि = मम शिरस उपरि। तस्य = मम पितुः अधःप्रदेशे = चरणयोरिति यावत् पतता मम च बाष्पेणाश्रुजलेन मम शिरः क्लेदितम् = संसिक्तम् मे पितुः पादौ च क्लेदितौ = संसिक्तौ। अत्र प्रक्रमदोषः श्लोके मे शिर इति क्रमानुसारेण पूर्ववाच्यमासीत्। अत्र दशरथस्याश्रूणि वात्सल्यतया, पितुः स्नेहातिशयं विलोक्य मम पितृस्नेहतयेति यथावद् वर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः। लक्षणं प्रागुक्तमेव। अनुष्टुप् छन्दः। एतस्यापि लक्षणं प्रागुक्तमेव ।।6।।

अनुवाद –

राम – तुमने ठीक हो सोचा। विधाता तुल्यस्वभाववाले जोड़े संसार में कम ही पैदा करते हैं। अवश्य ही मैं पितृपादों में गिर गया।

उस समय ऊपर से मेरे पिता के आँसू मुझ पर तथा नीचे पितृचरणों में गिरते हुए मेरे आँसू साथ-साथ गिर रहे थे जिससे मेरा शिर तथा पिताजी के चरण एक साथ ही क्लिन्न (आर्द्र) हो गये।।6।।

शब्दार्थ – समम् = एकसाथ, तस्य = पिता महाराज दशरथ के, बाष्पेण = आँसुओं से, तस्योपरि = उनके ऊपर, क्लेदितम् = गीला कर दिया।

टिप्पणी – क्लेदितौ = क्लिद्+णिच्+क्त (प्रथमा विभक्ति द्विवचन), पतता = पत्+शतृ (तृतीया विभक्ति एकवचन), बाष्पेण = तृतीया विभक्ति एकवचन, तस्योपरि = तस्य+उपारि (गुण सन्धि), ममाप्यधः = मम+अपि+अधः (दीर्घ, यण् सन्धि)

प्रस्तुत श्लोक में पिता और पुत्र के स्नेह का अत्यधिक स्वाभाविक वर्णन होने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार है। प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

सीता – ततस्ततः। (तदो तदो।)

रामः – ततोऽप्रतिगृह्यमाणेष्वनुनयेषु आपन्नजरादोषैः स्वैः प्राणैरस्मि शापितः।

सीता – ततस्ततः। (तदो तदो।)

रामः – ततस्तदानीं,

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते।
सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे
राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा ।।7।।

अन्वयः – शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे अभिषेके रुदता नृपतिना स्वयं छत्रे गृहीते सम्भ्रान्तया मन्थरया राज्ञः कर्णे शनैः किमप्यभिहितं च। न च राजा अस्मि।।7।।

व्याख्या – शत्रुघ्नेति। शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे = शत्रुघ्नलक्ष्मणाभ्यां गृहीतः घटः यस्मिन् तथाभूते अभिषेके = अभिषेचनकार्ये समारब्धे यद्यपि रामायणे शत्रुघ्नस्य तदानीं भरतेन सह मातुलगृहे निवास उक्तस्तथापि कविनात्र तदनुसरणे प्रयासो न विहितः। निरङ्कुशा हि कवयः रुदता आनन्दजाश्रूणि मुञ्चता नृपतिना स्वयं छत्रे गृहीते सति संभ्रान्तया = त्वरितागतया मन्थरया तन्नाम्न्या कुब्जया कैकेयोदास्या राज्ञः दशरथस्य कर्णे = श्रवणपुटे शनैः = मन्दं मन्दं यथान्ये न शृणुयुस्तथा किमपि अभिहितम् = उक्तम्। तदा प्रभृति अहं राजा नास्मि राजा न भवामि च। श्लोके द्वौ चकारौ क्रियायोगपद्यं द्योतयतः। मन्थराकथनसमकालमेव ममाभिषेको निरस्त इति भाव। वसन्ततिलकावृत्तम्। 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति तल्लक्षणम् ।।7।।

अनुवाद –

सीता – इसके बाद तब फिर क्या हुआ?

राम – फिर तो जब मैंने उनका प्रत्येक बार का अनुनय अस्वीकार कर दिया तब उन्होंने अपने जराजीर्ण प्राणों की मुझे शपथ दिलाई।

सीता – तब फिर।

राम – फिर तो उस समय ज्यों ही

अभिषेक के लिये लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने तीर्थजलपूर्ण घट उठाया तथा महाराज ने आनन्दाश्रु परिपूर्ण नेत्रों से छत्र लगाने के लिये संभाला ही था कि इतने में ही शीघ्रता से मन्थरा ने आकर महाराज के कानों में धीरे से कुछ कह दिया। इसलिये समस्त अभिषेकसामग्री के एकत्रित किये जाने पर तथा उसका उपयोग प्रारम्भ होने पर भी फिर अभिषेक कार्य रुक गया और मैं राजा नहीं हुआ ।।7।।

शब्दार्थ – शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे = शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण के द्वारा तीर्थ जल से परिपूर्ण घट को धारण किए जाने पर, छत्रे = छत्र, सम्भ्रान्तया = हाँफती हुई, नृपतिना = राजा दशरथ द्वारा, रुदता = रोते हुए, शनैः = धीरे से, अभिहितम् = कहा।

टिप्पणी – रुदता = रुद्+शतृ (तृतीया एकवचन)। गृहीते = गृह्+क्त (सप्तमी एकवचन)। अभिहितम् = अभि+धा+क्त। घटेऽभिषेके = घटे+अभिषेके (पूर्वरूप सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में समुच्चय अलंकार है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है।

मूलपाठ –

सीता – प्रियं मे महाराज एवं महाराजः, आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः। (पिअं मे महाराओ एव्व महाराओ, अय्यउत्तो एव्व अय्यउत्तो।)

रामः – मैथिलि! किमर्थं विमुक्तालङ्कारासि?

सीता – न खलु तावदाबध्नामि। (ण खुदाव आवज्झामि।)

रामः – न खलु। प्रत्यग्रावतारितैर्भूषणैर्भवितव्यम्। तथाहि –

कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ
संस्रंसिताभरणगौरतलौ च हस्तौ।
एतानि चाभरणभारनतानि गात्रे
स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत् ।।8।।

अन्वयः – कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ हस्तौ संस्रंसिताभरणगौरतलौ च गात्रे। आभरणभारनतानि एतानि स्थानानि तावत् समतां नैव उपयान्ति च ।।8।।

व्याख्या – कर्णौविति। कर्णौ श्रवणपुटौ, त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ = त्वरया शीघ्रताकारणेन अपहृतानि = अपसारितानि भूषणानि ययोस्तौ त्वरापहृतालङ्कारौ एव भुग्नपाशौ–भुग्नः =वक्रतां गतः पाशः = ग्रन्थितुल्यो भूषणाधारभागो ययोस्तौ शीघ्रतयापनीतेन भूषणे श्रवणे तत्कृतं भुग्नत्वमधुनाऽपि प्रतीयते इति भावः। हस्तौ च बाहू च संप्रेसितागौरतलौ–संत्रंसितानि = बलादपनयनकारणेन प्रच्यावितानि आभरणानि तैर्गौरं तलं ययोस्तौ तथाभूतौ स्तः बलादपनीतं कटकाद्याभूषणास्रंसनसंभवं बाहुभागगौरत्वमधुनापि विद्यमानं सत् भूषणापगमस्याचिरनिर्वृत्ततां प्रत्याययति। गात्रे = वपुषि, आभरणभारनतानि = भूषणधारणभारनिम्नीभूतानि स्थानानि समतां स्वां स्वाभाविकी स्थिति नैव उपयान्ति नैव प्राप्नुवन्ति। त्वं स्व गात्रशोभीनि भूषणानि अधुनैवापसारितवत्यसि यतः भूषणापसारणनम्रीभूतानि तानि तानि स्थानानि अद्यापि स्वस्वप्रतिभावं भजन्ते। अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ।।8।।

अनुवाद –

सीता – यह मेरे लिये अच्छा ही हुआ क्योंकि महाराज महाराज ही रहे और आर्यपुत्र आर्यपुत्र ही रहे । (अन्यथा राज्याभिषेक के अनन्तर महाराज के वन जाने से तथा आप पर राज्यभार आ पड़ने से मुझे क्लेश होता)

राम – मैथिलि! तुमने ये भूषण क्यों उतार डाले?

सीता – मैं तो इन्हें पहनती ही नहीं (फिर उतारने की बात तो दूर है)

राम – नहीं, ऐसी बात तो नहीं है। तुम इन्हें पहनती तो हो क्योंकि ये गहने तुम्हारे शरीर से अभी-अभी उतारे जान पड़ते हैं क्योंकि

कर्णफूल के उतारने से कानों के छेद की ग्रन्थि नीचे की ओर झुक जाने से टेढ़े ज्ञात हो रहे हैं। कङ्कणादि आभूषण के बलात् उतारे जाने के कारण हाथ के ये तलवे गौर

वर्ण के प्रतीत हो रहे हैं। अधिक क्या कहें, तुम्हारे शरीर के वे भाग जहाँ पर भूषण उतारे जाने के कारण कुछ गड्ढे से पड़ गये हैं अभी अपने स्वरूप में प्राप्त हुए नहीं दिखाई पड़ते।।8।।

शब्दार्थ – कर्णौ = दोनों कान, त्वरा = शीघ्रता से, अपह्रतभूषणभुग्नपाशौ = आभूषणों को उतारने से टेढे छिद्र वाले, संस्रिसिताभरणगौरतलौ = आभूषणों को निकालने के प्रयास से लाल हुई हथेलियों वाले, आभरणभारनतानि = आभूषणों के भार से झुके हुए।

टिप्पणी – आभरणभारनतानि = आभारणस्य भारः आभरणभारः तेन नतानि आभरणभारनतानि (तत्पुरुष समास), त्वरापह्रतभूषणभुग्नपाशौ = त्वरया अपह्रतैः भूषणैः भुग्नौ पाशौ यस्य (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में भूषण उतारने के क्रम में हाथों की लालिमा का स्वाभाविक वर्णन होने के कारण स्वभावोक्ति अलांकार है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है।

मूलपाठ –

सीता – पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम्। (पारेदि अय्यउत्तो अलिअं पि सच्चं विअ मन्तेदुं।)

रामः – तेन हि अलङ्क्रियताम्। अहमादर्शं धारयिष्ये। (तथा कृत्वा निर्वर्ण्य) तिष्ठ।

अनुवाद –

सीता – आप असत्य को भी सत्य सिद्ध कर सकते हैं।

राम – अच्छा! तुम इन आभूषणों को पहनो मैं दर्पण दिखाता हूँ (दर्पण हाथ में लेकर अच्छी तरह उसमें कुछ देखकर) ठहरो।

मूलपाठ –

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः।
हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा? ।।9।।

अन्वयः – आदर्शे वल्कलानि इव एते सूर्य रश्मयः किम्। हसितेन परिज्ञातम् इयं क्रीडा नियमस्पृहा ।।9।।

व्याख्या – आदर्शे इति–आदर्शे = दर्पणे वल्कलानि इव त्वया धृतानि इव प्रतीयन्ते। किन्तु पूर्वोक्तसौवर्णत्वसाम्यात् सन्देहो रामस्य अतः पृच्छति एते सूर्य रश्मयः किम्, वल्कलेभ्यो निःसृताः सूर्यांशवः किम्। निर्णीय आह–भवतु हसितेन = हासेन परिज्ञातम् नैते सूर्य रश्मयः किन्तु वल्कलान्येव। तदनन्तरं तद्विषये विजिज्ञासते इयं क्रीडा आहोस्वित् नियमस्पृहा–नियमस्य = तपश्चरणस्य स्पृहा = समीहा यन्निमित्तमिदं वल्कलधारणमित्यर्थः। संदेहालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ।।9।।

अनुवाद –

दर्पण में तुम वल्कल धारण करने जैसी प्रतीत हो रही हो। ये सूर्य की किरणें तो नहीं? अच्छा तुम्हारी हँसी से मुझे मालूम पड़ गया कि ये सूर्यरश्मियाँ नहीं हैं अपितु वल्कल ही हैं। अच्छा बताओ ये वल्कल क्रीड़ा में धारण की हो या तपस्या करने की तुम्हारी इच्छा हो रही है जिसके लिये इनको धारण की हो।।9।।

शब्दार्थ – आदर्शे = दर्पण में, वल्कलानि इव = वल्कल वस्त्रों की तरह, सूर्यरश्मयः = सूर्य रश्मियों की किरणें, हसितेन = हँसने से, नियमस्पृहा = नियम पालन की इच्छा।

टिप्पणी – सूर्यरश्मयः = सूर्यस्य रश्मयः सूर्यरश्मयः (तत्पुरुष समास), नियमस्पृहा = नियमस्य स्पृहा नियमस्पृहा (तत्पुरुष समास), वल्कलानीव = वल्कलानि+इव (दीर्घ सन्धि), क्रीडेयम् = क्रीडा+इयम् (गुण सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में सन्देह अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

अवदातिके! किमेतत्?

अवदातिका – भर्तः! 'किन्नु खलु शोभते न शोभते' इति कौतूहलेनाबद्धानि। (भट्टा! किण्णु हु सोहदि ण सोहदि त्ति कोदूहलेण आवज्झा।)

रामः – मैथिलि! किमिदम्? इक्ष्वाकूणां वृद्धालङ्कारस्त्वया धार्यते। अस्त्यस्माकं प्रीतिः। आनय।

सीता – मा खलु मा खल्वार्यपुत्रोऽमङ्गलं भणतु। (मा खु मा खु अय्यउत्तोअमङ्गलं भणादु।)

रामः – मैथिलि! किमर्थं वारयसि?

सीता – उज्झिताभिषेकस्यार्यपुत्रस्यामङ्गलमिव मे प्रतिभाति। (उज्झिदाहिसेअस्स अय्यउत्तस्स अमङ्गलं विअ मे पडिहादि।)

अनुवाद –

अवदातिके! यह क्या बात है?

अवदातिका – स्वामिन्! ये वल्कल मुझे अच्छे लगते हैं या नहीं यह जानने के लिये स्वामिनी ने खेल में इसे धारण कर लिया है।

राम – मैथिली! ऐसा क्यों? जो इक्ष्वाकुवंशियों का वृद्धालङ्कार तुमने पहन लिया। अब तो मेरी भी रुचि इन्हें पहनने की हो रही है। अतः यह वल्कल दो।

सीता – नहीं नहीं! आर्यपुत्र को ऐसे अमङ्गल शब्द नहीं बोलना चाहिये।

राम – मैथिलि! मुझे क्यों मना करती हो?

सीता – अभी-अभी आर्यपुत्र ने (विघ्न के कारण) राज्याभिषेक का त्याग किया है इसलिये मुझे आप द्वारा इस वल्कल धारण में भी अमङ्गल जैसी प्रतीति हो रही है।

मूलपाठ –

रामः – मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ।।10।।

अन्वयः – परिहासे स्वयं मन्यु मा उत्पाद्य विशेषतः हि यदा मे शरीरार्द्धेन त्वया पूर्वम् आबद्धा ।।10।।

व्याख्या–मेति। परिहासे = त्वदुपभुक्तवल्कलयाचनारूपे मम परिहासे स्वयम् आत्मनैव मन्यु = दुःखं खेदं वा मा उत्पाद्य अलं विधाय। विनोदार्थं त्वया धारितस्य वल्कलस्य याचनेऽमङ्गलया शङ्कया व्यथां मा विधेहीत्यर्थः। तत्र कारणमुपन्यस्यति विशेषतः =

विशेषेण हि यतः = यदा मे शरीरार्द्धेन त्वया वल्कला पूर्वमाबद्धा। 'अर्धो वा एष आत्मनो पत्नी' इति श्रुत्वा मद्देहार्धभूतया त्वया स्वदेहे प्रागेव वल्कला आबद्धा। यदि त्वं वल्कलं परिधृतवती तदाऽहमपि धृतवानेव। अतएवार्द्धदेहभूतया त्वया पिनद्धं वल्कलं मया याचते। तत्रामङ्गलस्य शङ्कावसर एव नास्तीत्यर्थः। पूर्ववाक्यार्थे उत्तरवाक्यार्थस्य हेतुत्वात् काव्यलिङ्गलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः। अत्र 'मा उत्पाद्य' इति चिन्त्यप्रयोगः।।10।।

अनुवाद –

राम – तुम्हें अपने आप दुःखी नहीं होना चाहिये मैं तो परिहास के लिये ही ऐसा (तुम्हारे द्वारा धारण किये गये इस वल्कल की याचना) कर रहा हूँ विशेष कर मेरे अर्धाङ्गस्वरूप तुमने जब पहले ही इस वल्कल को धारण कर लिया तो मैंने भी धारण कर ही लिया। फिर इसकी याचना में दुःख या आशङ्का किस बात की ?।।10।।

शब्दार्थ – परिहासे = हँसी-हँसी में, स्वयम् = अपने आप, मन्युम् = क्रोध, उत्पाद्य = उत्पन्न करके, शरीरार्धेन = अर्द्धांगिनीभूत तुमने, वल्कल = वल्कल वस्त्र।

व्याकरण – परिहासे = सप्तमी एकवचन, शरीरार्धेन = शरीरस्य अर्धेन शरीरार्धेन (तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य आदि पूर्व वाक्यार्थ में उत्तर वाक्यार्थ का हेतु वर्णित होने के कारण काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ – **(नेपथ्ये)**

हा हा महाराजः।

सीता – आर्यपुत्र किमेतत्? (अय्यउत्त! किं एदं?)

रामः – (आकर्ण्य)

नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादो यदा ध्वनिः।
सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ।।11।।

अन्वयः – नारीणां पुरुषाणां च यदा निर्मर्यादः ध्वनिः ततः प्रभवामीति दैवेन मूले ताडितम् ।।11।।

व्याख्या – नारीणामिति–नारीणां = वनितानां पुरुषाणां = नराणां च यदा = यतः निर्मर्यादः–मर्यादाया निष्क्रान्तः इति निर्मर्यादः स्थितेः बहिः यावदयं ध्वनिः = खेदसूचकः शब्दः यतः अतः सुखानुमेयं कारणमस्य शब्दस्य भवेदिति शेषः। ततः प्रभवामि कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् वा सर्वथा मे शक्ति; इति कृत्वा दैवेन = विधात्रा मूले = मुख्यस्थाने एव न तु शाखायामित्यर्थः। ताडितम् = प्रहतः मूलस्थानं प्रहृत्य सर्वथा विनाशो विहित इत्यर्थः। रघुवंशमूलभूते पुरुषे दशरथे प्रहरता देवेन समस्तो रघुवंशः विनाशितः इति दैवस्याप्रतिमं सामर्थ्य सुव्यक्तम्, दैवी विपत्तिः दशरथस्योपरि आपतिता न पुरुषकृता इति भावः। उत्प्रेक्षालङ्कारः। सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। इति तल्लक्षणम्। अनुष्टुप् छन्दः।।11।।

अनुवाद – (नेपथ्य में)

हाय! हाय! महाराज!

सीता – आर्यपुत्र यह क्या हो गया।

अनुवाद –

राम – (सुनकर)

जो यह स्त्री-पुरुषों का जोर-जोर से भयंकर कोलाहल सुनाई पड़ रहा है इससे ज्ञात होता है कि काल ने कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं रूप अपना सामर्थ्य प्रकट करने के लिये एवं समस्त रघुवंश के विनाश के लिये उसके मूल पर ही इस प्रकार प्रहार किया है ।।11।।

शब्दार्थ – नारीणाम् = स्त्रियों का, पुरुषाणाम् = पुरुषों का, निर्मर्यादः = मर्यादाहीन, ध्वनिः = कोलाहल, सुव्यक्तम् = स्पष्ट होना, दैवेन = विधाता, ताडितम् = प्रहार करना।

व्याकरण – निर्मर्यादः = निष्क्रान्ता मर्यादायाः निर्मर्यादः (अव्ययीभाव समास), प्रभवामीति = प्रभवामि+इति (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

तूर्णं ज्ञायतां शब्दः।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः – परित्रायतां परित्रायतां कुमारः।

रामः – आर्य! कः परित्रातव्यः?

काञ्चुकीयः – महाराजः।

रामः – महाराज इति। आर्य! ननु वक्तव्यम् एकशरीरसंक्षिप्ता पृथ्वी रक्षितव्येति। अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः?

काञ्चुकीयः – स्वजनात्।

रामः – स्वजनादिति। हन्त! नास्ति प्रतिकारः।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा।
कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति? ।।12।।

अन्वयः – यथा अरिः शरीरे प्रहरति। स्वजनः तथा हृदये प्रहरति कस्य स्वजनशब्दः इति मे लज्जा उत्पादयति ।।12 ।।

व्याख्या – शरीरे इति। अरिः = शत्रुः शरीरे = वपुषि प्रहरति = घातयति। स्वजनः = आत्मीयो जनः हृदये = मनसि तथा प्रहरति। शरीरप्रहारः सोढुं शक्यते किन्तु हृदयाघात सर्वथा दुःसहः यतः सोऽनर्थाय कल्पते। यदि स्वजनान्महाराजस्य विपदुपस्थिता तदा दुःशकः तस्य निराकरणोपाय इति तात्पर्यम्। तत्र स्वजनं नामतो ज्ञातुं जिज्ञासते कस्येति–स्वजनशब्दः कस्य विषये प्रयुज्यमानस्तव स्वजनशब्दः यः मां लज्जामुत्पादयति। येन स्वजनेनेदमाचरितं तत्र स्वजनशब्दप्रयोगः मां लज्जयति। कतमोऽयं स्वजनः येनेदं जघन्यमाचरितमिति भावः।।12।।

अनुवाद –

जल्दी यह पता लगाओ यह कैसा कोलाहल है। (कञ्चुकी का प्रवेश)

(कञ्चुकी प्रवेश कर)

कञ्चुकी – कुमार, बचाइये बचाइये।

राम – आर्य, किसे बचाने के लिये कहते हो?

कञ्चुकी – महाराज को।

राम – क्या कहते हो महाराज को? आर्य! तब यह क्यों नहीं कहते कि समस्त भूमण्डल संक्षिप्तरूप से जिसमें समाविष्ट है उस शरीरधारी पृथ्वी की रक्षा कीजिये। अच्छा यह बताओ महाराज पर यह आपत्ति आई कहाँ से?

कञ्चुकी – स्वजन से।

राम – क्या कहते हो आत्मीयजन से? तब तो इसका कोई प्रतीकार नहीं।

जिस प्रकार बाहरी शत्रु शरीर पर आघात करता है उसी प्रकार स्वजन हृदय पर आघात करते हैं। शरीर के आघात की प्रतिक्रिया है पर हृदयाघात का कोई उपचार नहीं। अच्छा यह स्वजन शब्द तुम किसके लिये कहते हो जिसे सुनकर हमें लाज आ रही है।।12।।

शब्दार्थ – शरीरे = देह में, अरिः = शत्रु, स्वजनः = अपना सम्बन्धी, लज्जाम् = लज्जा, उत्पादयिष्यति = उत्पन्न करना।

व्याकरण – प्रहरति = प्र+हृ+तिप् (लट्.प्र.पु.ए.व.), शरीरेऽरिः = शरीरे+अरिः (पूर्वरूप सन्धि), स्वजनस्तथा = स्वजनः+तथा (विसर्ग सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

काञ्चुकीयः – तत्रभवत्याः कैकेय्याः।

रामः – किमम्बायाः? तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम् ।

काञ्चुकीयः – कथमिव ?

रामः – श्रूयताम्,

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।

फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ।।13।।

अन्वयः – यस्याः शक्रसमः भर्ता या च मया पुत्रवती। अतः तस्या कस्मिन् फले स्पृहा येन अकार्यं करिष्यति ।।13।।

व्याख्या – यस्याः इति। यस्याः = कैकेय्याः भर्ता = स्वामी शक्रसमः = इन्द्र तुल्यः यः मानुषसामर्थ्यासाध्यमपि कार्यं सम्पादयितुमलम्। न केवलं तादृशभर्तृमती अपि पुत्रवत्यपि। तदाह–या मया पुत्रवती = पुत्रयुक्ता यं यं कामयेत् सा तत्सर्वं तस्याज्ञया साधयितुमहं सक्षम इत्यर्थः। एतादृश्या अम्बायाः कस्मिन् फले = साध्यरूपे स्पृहा–इच्छा भविष्यति येन फलेन हेतुना एतादृशं जघन्यमकार्यं भर्तृव्यसनरूपं करिष्यति उत्पादयिष्यति। जगति नास्ति किमपि एतादृशं फलं यदहं महाराजो वा साधयितुमसमर्थः। अत्रासन्नं पितृव्यसनं श्रुत्वापि रामः कैकेय्यामचलां श्रद्धां व्यनक्ति। तेनास्य धीरोदात्तता सिद्धयति। अनुष्टुप् छन्दः।।13।।

अनुवाद –

कञ्चुकी – पूज्य कैकेयी के द्वारा यह आपत्ति आयी है।

राम – क्या कहते हो, अम्बा के द्वारा यह आपत्ति आई है? तब तो यह आपत्ति परिणाम में गुणवती सिद्ध होगी।

कञ्चुकी – भद्र! सो कैसे?

राम – आर्य! सुनिये। जिसका पति इन्द्र के समान पराक्रमी तथा मेरे जैसे पुत्र के कारण जो पुत्रवती है। भला उसकी किस फल की आकाङ्क्षा होगी जिसके लिये वह इतना बड़ा जघन्य कार्य करेगी ।।13।।

शब्दार्थ – यस्याः = जिस कैकेयी का, शक्रसमो = इन्द्र के समान, भर्ता = पति, स्पृहा = इच्छा, अकार्यम् = न करने योग्य कार्य।

टिप्पणी – शक्रसमः = शक्रेण समः (तृतीया तत्पुरुष समास), येनाकार्यम् = येन+अकार्यम् (दीर्घ सन्धि)

प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

काञ्चुकीयः – कुमार! अलमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम्। तस्या एव खलु वचनाद् भवदभिषेको निवृत्तः।

रामः – आर्य! गुणाः खल्वत्र।

काञ्चुकीयः – कथमिव?

अनुवाद –

कञ्चुकी – राजकुमार! आप अपनी सरलता के कारण विनष्ट बुद्धिवाली कैकेयी में इस प्रकार का विचार न करें। अभी-अभी उसी के कहने से तो आपका अभिषेक रुक गया।

राम – आर्य! उसके इस निश्चय में भी बहुत गुण हैं।

कञ्चुकी – सो कैसे?

मूलपाठ –

रामः – श्रूयताम्,

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव ताव–
न्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव।
नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजाना–
मथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ।।14।।

अन्वयः – तावत् पार्थिवस्यैव वनगमननिवृत्तिः। मम पितृपरवत्ता। स एव बालभावः नवनृपतिविमर्श प्रजानां शङ्का नास्ति अथ च मे भ्रातरः परिभोगैः न वञ्चिताः ।।14।।

व्याख्या – वनगमनेति। तावद्–आदौ पार्थिवस्य–राज्ञो दशरथस्य वनगमननिवृत्तिः = वनगमनान्निवृत्तिः अवरोधः बभूवेत्येको गुणः। मम पितृपरवत्ता–पितृ पारतन्त्र्यम् स एव

तादृश एव इति द्वितीयो गुणः। मे बालभावः–पितरि स्थिते मम पुत्रभावोऽपि तादृगेवेति तृतीयो गुणः। नवनृपतिविमर्श–नवो यः नृपतिस्तस्य विमर्श = विचारे कीदृगयं नवीनो राजा इति चिन्ताविषये प्रजानां प्रकृतीनां शङ्का सम्भ्रमः नास्ति =इति बभूवेति चतुर्थो गुणः। अथ चापि मे भ्रातरः भरतादयः परिभोगः = राज्यसुखादिभोगैः न वञ्चिताः = न पृथक्भूताः पितृराज्यशासने सर्वेषां भ्रातृणां राज्यसुखावाप्तौ समानाधिकार इति भावः। अयं पञ्चमो गुणः। अभिषेक निवृत्तौ तद्गुणोदतायामेकस्यैव गुणस्य कथने पर्याप्तेऽनेकेषामुल्लेखात् समुच्चयालङ्कारः। मालिनीवृत्तम्। ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकैरिति तल्लक्षणम् ।।14।।

अनुवाद –

राम – आर्य! सुनिये।

सर्वप्रथम तो उसके ऐसा करने से महाराज का वन जाना रुक गया। दूसरा यह कि मैं पिता के अधीनस्थ रह गया एवं बालभाव बना रहा। अब नवीन राजा के विषय में मेरा यह राजा कैसा होगा इस प्रकार की चिन्ता प्रजामण्डल को नहीं करनी पड़ेगी और मेरे भाई लोग राज्यसुख के उपभोग से वञ्चित नहीं हुए।।14।।

शब्दार्थ – पार्थिवस्यैव = राजा दशरथ का ही, वनगमननिवृत्तिः = वन जाने से रुकना, पितृपरवत्ता = पिता के अधीन रहना, बालभावः = शैशवकालीन भाव, नवनृपतिविमर्शः = नए राजा के विषय में सोचना, परिभोगैः = राजोचित भोग।

टिप्पणी – वनगमननिवृत्तिः = वनगमनात् निवृत्तिः (पञ्चमी तत्पुरुष समास), पितृपरवत्ता = पितुः परवत्ता (षष्ठी तत्पुरुष समास), नवनृपतिविमर्शः = नव नृपतेः विमर्शाः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पार्थिवस्येव = पार्थिवस्य+एव (वृद्धि सन्धि), तावन्मम = तावत्+मम (व्यंजन सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में समुच्चय अलंकार है। यहाँ मालिनी छन्द है।

मूलपाठ –

काञ्चुकीयः – अथ च तयाऽनाहूतोपसृतया भरतोऽभिषिच्यतां राज्य इत्युक्तम्। अत्राप्यलोभः?

रामः – आर्य! भवान् खल्वस्मत्पक्षपातादेव नार्थमवेक्षते। कुतः,

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते।
तस्याः लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ।।15।।

अन्वयः – शुल्के पुत्रार्थे विपणितं राज्यं यदि याच्यते अत्र तस्याः लोभः (किम्) भ्रातृ राज्यापहारिणाम् अस्माकं (लोभः) न? ।।15।।

व्याख्या – शुल्के = विवाहकालिककन्याग्रहणनेतन्यमूल्ये पुत्रार्थे = भाविपुत्रकृते विपणितं = पूर्व प्रतिश्रुतं राज्यं यदि तया याच्यते = प्रार्थ्यते तर्हि तस्याः = अम्बायाः कैकेय्याः अत्र विषये = राज्यप्रार्थनारूपे लोभः किम्? न कोऽपि लोभः इत्यर्थः। अत्र काकुः। भ्रातृराज्यापहारिणाम्–भ्रातुः–भरतस्य राज्यापहारिणाम् = राज्यमपहरन्तीति तच्छीलानां अस्माकं न लोभः। किमिति शेषः। कैकेय्याः विवाह काले हि अस्याम् संजनिष्यमाणः पुत्र एव राज्यभाग भविष्यतीति महाराजेन शुल्करूपेण प्रतिश्रुतम्। इति हेतोः न्यायतः भरतस्य राज्ये जन्मसिद्धोऽधिकारः इति। एवं राज्यप्रार्थने तस्या

लोभलवोऽपि नास्ति, प्रत्युत भरतस्य राज्यमधितिष्ठन्तो वयमेव दोषभाजः इति भावः। काक्वा वक्रोक्तिरलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ।।15।।

अनुवाद –

कञ्चुकी – परन्तु उसने बिना बुलाये ही जो राजा से यह कहा कि राज्य शुल्क पर भरत का अभिषेक कीजिये क्या उसका यह अलोभ है ?

राम – आर्य! आप हमारे प्रति पक्षपात के कारण ही वास्तविक बात ठीक से नहीं समझ पा रहे हैं।

यदि विवाह-शुल्क में अपने पुत्र के लिये वह राज्य माँगती है तो इसमें उसका क्या लोभ है। यदि इसे लोभ कहा जाये तो भाई के लिये प्रतिज्ञात राज्य को अपहरण करने वाले हम लोगों का भी लोभ क्यों नहीं।।15।।

शब्दार्थ – शुल्के = विवाह के समय वरपक्ष की ओर से कन्या के पिता आदि को दिया जाने वाला वचन, पुत्रार्थे = पुत्र के लिए, विपणितम् = प्रतिज्ञात, भ्रातृराज्यापहारिणाम् = भाई भरत के राज्य का अपहरण करने वाले, अस्माकम् = हम।

टिप्पणी – भ्रातृराज्यापहारिणाम् = भातुः राज्यं भ्रातृराज्यं तत् अपहरन्ति तेषाम् (तत्पुरुष गर्भ बहुव्रीहि), पुत्रार्थे = पुत्र+अर्थे (दीर्घ सन्धि), लोभोऽत्र = लोभः+अत्र (पूर्वरूप सन्धि), नास्माकं = न+अस्माकम् (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में काकु वक्रोक्ति है तथा अनुष्टुप् छन्द है।

बोध प्रश्न

1) प्रतिमानाटक के मंगलाचरण में भास कवि ने किसकी स्तुति की है?

.....

.....

.....

2) 'भद्रासने' पद में कौन सा समास है?

.....

.....

.....

3) 'क्लेदितम्' पद का क्या तात्पर्य है?

.....

.....

4) अभिषेक के लिए तीर्थजलपूर्ण घट किसने उठाया?

.....

.....

5) 'सूर्यरश्मयः' पद का समास विग्रह कीजिए।

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

1) 'शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके' श्लोक की व्याख्या कीजिए।

8.3 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा कि सूत्रधार नाटक के आरम्भ में दर्शकों की मंगलकामना करता है। भास अपने नाटकों में नान्दी के व्याज से प्रमुख पात्रों का भी उल्लेख करते हैं। उनकी रचनाओं में अलंकार स्वभाविक रूप से आते हैं। भास बलात् अलंकारों के प्रयोग के पक्षधर नहीं हैं। प्रकृति का चित्रण करने में भी महाकवि भास सिद्धहस्त हैं। 'चरति पुलिनेषु हंसी' इत्यादि पद्य में उन्होंने ताश पुष्प और हंसी के औपम्य को बड़ी निपुणता के साथ निरूपित किया है। आपने इस इकाई में यह भी देखा कि राम के युवराज के रूप में अभिषेक की समस्त तैयारियाँ पूर्ण कर ली जाती हैं। वहाँ चवँर सहित छत्र, माँगलिक वाद्य, सिंहासन, दर्भ, पुष्प, मांगलिक तीर्थों के जल इत्यादि सभी कुछ उपस्थित कर दिया जाता है। नगरवासियों में यह प्रसन्नता फैल जाती है कि अब श्रीराम हमारे राजा होंगे। उसी समय औदातिका नामक दासी वल्कल लेकर प्रवेश करती है। सीता उससे पूछती हैं कि यह वल्कल तुम कहाँ से लाई हो? सीता उन वल्कलों को धारण भी करती हैं। कुछ ही देर बाद राम प्रविष्ट होते हैं और वह सीता को सूचना देते हैं कि राज्याभिषेक रोक दिया गया है। कवि यहाँ राम को अत्यधिक प्रसन्न मुद्रा में प्रस्तुत करता है। राम बताते हैं कि जब शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण ने तीर्थजल से परिपूर्ण घट को ले लिया तथा महाराज ने स्वयं आनन्दपूर्वक छत्र को अपने हाथों में सँभाला किन्तु मध्य में आकर दासी मन्थरा ने उनके कान में कुछ कहकर राज्याभिषेक को रुकवा दिया। राम सीता को वल्कल वस्त्र धारण किए हुए देखकर उनको धारण करने का कारण पूछते हैं। इन्हीं प्रसंगों के मध्य राम यह भी कहते हैं कि शत्रु शरीर में प्रहार करता है किन्तु स्वजन हृदय में प्रहार करता है। इस स्वजन शब्द का प्रयोग कहाँ किया जाए यह समझना अत्यन्त कठिन है। कंचुकी जब यह बताता है कि राम के राज्याभिषेक को रोकने का कार्य कैकेयी ने किया है तो वह स्पष्ट कहते हैं कि कैकेयी ऐसा दुष्कर्म नहीं कर सकती, उनका पति इन्द्र जैसा महान् है और मुझ जैसा उनका पुत्र है। ऐसा कार्य करके वह महाराज दशरथ को विपत्ति में नहीं डाल सकती। राम इस बात से प्रसन्न दिखते हैं कि मेरा राज्याभिषेक हो जाने पर शास्त्रीय नियम के अनुसार दशरथ वानप्रस्थ ले लेते और वन चले जाते किन्तु राज्याभिषेक रुक जाने के कारण यह अवांछित कार्य नहीं हुआ। मेरी बाल्यावस्था बनी रही और पिता जी भी राजा रह आये। राम अयोध्या के राज्य में भरत का ही अधिकार निरूपित करते हैं। इस प्रकार से आपकी यह इकाई समाप्त होती है। इसके आगे की घटना आप अगली इकाई में पढ़ेंगे।

8.4 शब्दावली

पुलिनेषु – तटों पर

भद्रासने – राजसिंहासन

मेदिन्याम् – पृथिवी पर

पटहे – नगाड़ा

वाष्पेण – आँसुओं से

सम्भ्रान्तया – हाँफती हुई

त्वरा – शीघ्रता से

आदर्श – दर्पण में

दैवेन – विधाता

अरिः – शत्रु

शक्रसमो – इन्द्र के समान

विपणितम् – प्रतिज्ञात

8.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

i) प्रतिमानाटकम् (अनु.) डॉ. श्री कृष्ण ओझा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर ।

ii) प्रतिमानाटकम् (व्या.) डॉ. सावित्री गुप्ता, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2006

iii) प्रतिमानाटकम् (व्या.) आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009

iv) प्रतिमानाटकम् (सम्पा.) श्रीधरानन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2016

v) संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (ले.) डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018

8.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) प्रतिमानाटक के मंगलाचरण में भास कवि ने राम की स्तुति की है।

2) 'भद्रासने' पद में कर्मधारय समास है।

3) 'क्लेदितम्' पद का तात्पर्य है– गीला कर दिया।

4) अभिषेक के लिए तीर्थजलपूर्ण घट लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने उठाया।

5) 'सूर्यरश्मयः' पद का समास विग्रह है– सूर्यस्य रश्मयः।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।